सर्वहारा दृष्टिकोण

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर आफ इंडिया का मुख पत्र–(पाक्षिक)

मुख्य सम्पादक : प्रीतीश चन्दा

वर्ष 1 अंक 8 22 जनवरी 1986 मूल्य 50 पैसे

अमरीका द्वारा लीबिया पर आक्रमण की धमकी

पिछले कुछ दिनों से लीबिया को केन्द्र करके गंभीर तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। साम्राज्यवादी अमरीका खुले रूप में लीबिया पर सीधे सैनिक हमले की भूमिका तैयार कर रहा है। यह एक तथ्य है कि अफ्रीका महाद्वीप में लीबिया एक लम्बे अर्से से अमरीका की आंखों में खटक रहा था, क्योंकि लीबिया इस क्षेत्र में अमरीकी साम्राज्यवादी हितों के पूरा होने में सबसे बड़ी बाधा के रूप में काम कर रहा था। कुछ दिन पहले जब रोम और वियना हवाई अड्डों पर बम-विस्फोट हुए थे, अमरीका को एक बहाना मिल गया। इन आतंकवादी कार्रवाइयों के पीछे लीबिया के राष्ट्रपति कर्नल कज्जाफी का हाथ होने का आरोप लगा कर अमरीकी राष्ट्रपति श्री रीगन ने तत्काल लीबिया के साथ हर प्रकार के व्यापारिक संबंध तोड़ने की घोषणा कर दी। रीगन प्रशासन ने यूरोपीय देशों सहित अपने खेमे के अन्य पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देशों को भी लीबिया से अपने व्यापारिक संबंध तोड़ लेने की सलाह दी। राष्ट्रपति रीगन ने एक प्रेस कान्फ्रेंस में यह घोषणा भी की कि यदि लीबिया के नेता कर्नल कज्जाफी ने आतंकवादियों से नाता नहीं तोड़ा तो लीबिया के खिलाफ 'कुछ और कदम' उठाए जाएंगे। लीबिया के अन्तर्राष्ट्रीय मामलात की अमरीकी अपील को लीबिया ने 'राजनीतिक तौर पर युद्ध की घोषणा' बताया। 'कुछ और कदम' उठाने का अर्थ भी विकल्प सैनिक कार्रवाई के अतिरिक्त और क्या हो सकता था। 4 जनवरी को अमरीका ने अपने दो युद्धपोतों को युद्ध के लिये तत्पर रहने के आदेश दे दिये और एक विमान-वाहक पोत लीबिया की ओर रवाना कर दिया। सेनाध्यक्षों ने हमले के लिये लक्ष्य निर्धारित कर लिये। स्थिति अत्यन्त विस्फोटक और भयावह हो गयी। विश्व-शांति पर खतरे के बादल मंडराते देख कर दुनिया के सभी देश चिन्तित हो उठे।

उल्लेखनीय है कि अमरीका स्वयं इजराइल के साथ मिलकर मुस्लिम आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा देता रहा है। इस पर कर्नल कज्जाफी ने रोम और वियना में हुए बमविस्फोटों के पीछे लीबिया का हाथ होने की बात का मजबूती से खंडन किया है। यही नहीं कर्नल कज्जाफी ने यह भी कहा कि लीबिया मुस्लिम गतिविधियों का विरोध करने के लिये संयुक्त कार्रवाई में आने को भी तैयार है। इससे साबित हो जाता है कि लीबिया के खिलाफ इस अमरीकी आक्रमण धमकी के पीछे कारण कुछ और ही है।

दुनिया के अनेक देशों ने इस घटना के लिये अमरीका की कड़ी निन्दा की है। इस सारे घटनाक्रम के दौरान, सोवियत संघ की समाचार एजेंसी 'तास' के अनुसार सोवियत संघ ने कहा 'लीबिया के विरुद्ध अमरीकी कार्रवाई के गंभीर तथा भयंकर परिणाम हो सकते हैं।' विश्व शांति को खतरे में डालकर जब विश्व साम्राज्यवाद पूंजीवाद का सरगना इस प्रकार का आक्रामक रुख अख्तियार कर रहा है, ऐसे में समाजवादी खेमे के सबसे प्रभावशाली देश, जो साम्राज्यवादियों के युद्ध के मनसूबों को नाकामयाब करने में सक्षम है, का क्या मात्र इतना कहना काफी है? क्या उसे साफ कह देना चाहिए कि साम्राज्यवादियों को शांति की अपीलों/सहमतियों के साथ वार्ताओं और बातचीत के माध्यम से विश्व में शांति स्थापित नहीं की जा सकती। विश्वशांति को बरकरार रखने के लिए रूस को कड़ा रुख अख्तियार करना पड़ेगा।

आज साम्राज्यवादी विश्व पूंजीवाद अपने गहन संकट के तीसरे दौर से गुजरता हुआ बाजार के अभूतपूर्व संकट में फंसा हुआ है। ऐसी स्थिति में दुनिया के सभी पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देश अपनी जर्जर अर्थव्यवस्था में बनावटी उछाल लाने के उद्देश्य से अपनी-अपनी अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण करने में लगे हैं। विश्व साम्राज्यवाद-पूंजीवाद का मुखिया अमरीका दुनिया को आणविक युद्ध और अन्तरिक्ष युद्ध की धमकी देकर ब्लैकमेल करना चाहता है। अणु विस्फोट पर एकतरफा रोक और सन् 2000 तक सभी आणविक अस्त्रों को नष्ट कर देने के रूसी प्रस्ताव के बावजूद अमरीका अपनी 'अन्तरिक्ष युद्ध' की योजना को छोड़ने को राजी नहीं हो रहा है। बाजार के संकट की समस्या का समाधान करने के लिए अमरीकी साम्राज्यवाद विश्व में स्थान-स्थान पर आंशिक और स्थानीय युद्धों को भड़का रहा है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

भारतीय अर्थ-व्यवस्था की वर्तमान दशा

देश की मौजूदा अर्थव्यवस्था अभूतपूर्व गहन संकट में फंसी हुई है। यद्यपि यह संकट, विश्व पूंजीवाद के संकट का ही एक अंग है तथापि इसकी कुछ अपनी विशेषताएं हैं। मरणासन्न पूंजीवाद के तीव्र संकट के इस तीसरे दौर में, भारतीय पूंजीवाद विभिन्न प्रकार के नियोजन और नियंत्रणों के माध्यम से, पूंजीवादी रास्ते पर व्यापकतम और तीव्रतम विकास की प्रक्रिया शुरू कर रहा है। भारतीय शासकों ने यह सुनिश्चित कर दिया है कि एकाधिकारी वित्तीय पूंजी श्रम पर अतिरिक्त मूल्य (Surplus value) निचोड़ते हुए दौलत के अंबार खड़े कर सके। फिर चाहे भारतीय जनता की रोजी रोटी भी खतरे में क्यों न पड़ जाए।

तथाकथित 'राष्ट्रीय आर्थिक विकास' ने औद्योगिकरण तथा सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने के बजाए इस असन्तुलन को और भी बढ़ाया है। परिणामस्वरूप अनगिनत एकाधिकारी घरानों के हाथों में पूंजी का केन्द्रीकरण हुआ है। ऐसा होना अनिवार्य ही था, क्योंकि साम्राज्यवादी शासन के गर्भ से उत्पन्न भारतीय पूंजीवाद इस पुट को लेकर ही उत्पन्न हुआ था। पूंजीवादी विकास के नियम के अनुसार ही पूंजीपतियों ने अतिलाभ (superprofits) अर्जित कर, दौलत के पहाड़ खड़े कर लिये हैं। अब इस दौलत को, वित्तीय पूंजी के रूप में, विदेशी बाजारों और विशेषकर एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अपेक्षाकृत कम विकसित देशों में वहां के सस्ते प्राकृतिक संसाधनों और श्रम का शोषण करने के लिये निर्यात किया जा रहा है।

स्वभावतः ही देश की आर्थिक प्रगति के ढांचे में तीव्र विरोधाभास दिखाई देता है। इसमें एक तरफ तो बड़ी व आधुनिक औद्योगिक इकाइयां हैं और दूसरी तरफ बड़े पैमाने पर पड़ा विशाल

(शेष पृष्ठ 8 पर)

प्रस्तावित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के खिलाफ 20 फरवरी 1986 को

संसद पर ए. आई. डी. एस. ओ. का

विशाल अखिल भारतीय छात्र प्रदर्शन

21-22 फरवरी 1986 को राजघाट के सामने मैदान में

अखिल भारतीय छात्र सम्मेलन

पंजाब में फिर अशांति का दौर

भारी उथल-पुथल और जान-माल के अकूत नुकसान के बाद जब गत दिनों पंजाब समझौता हुआ तो देश के लोगों ने राहत की सांस ली थी। यह समझौता अच्छा था या बुरा, इस पर टिप्पणी न भी की जाए, तो भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि समझौते के बाद लोग सोच रहे थे अब पंजाब में फिर से स्थायित्व और शांति कायम होगी तथा हिन्दू-सिख साम्प्रदायिक तनाव, जो उत्पन्न किया गया था उसमें कमी आएगी। लेकिन समझौते के फौरन बाद हुई संत लोंगोवाल की हत्या ने लोगों को स्तब्ध कर दिया।

सम्पादकीय

तत्पश्चात् हुए विधान सभा चुनाव, और पंजाब में श्री सुरजीत सिंह बरनाला की अकाली सरकार सत्तारूढ़ हुई। साथ-ही-साथ एक बार फिर से लूटपाट व हत्या का नृशंस सिलसिला शुरू हो गया। जो शक्तियाँ समझौते से पहले पंजाब में आतंक, असुरक्षा, अस्थिरता व साम्प्रदायिकता का वातावरण बनाए रखना चाहती थीं, वही शक्तियां एक बार फिर से सक्रिय होती दिखाई दे रही हैं। साथ ही साथ शिव सेना और हिन्दू मंच के माध्यम से हिन्दू उग्रपंथ भी प्रतिक्रिया भी सर उठा रही है। उल्लेखनीय है कि कुछ समय पहले तक शिव-सेना की गतिविधियां महाराष्ट्र के कुछ बड़े शहरों और विशेषकर बम्बई तक ही सीमित थीं।

सत्ता-सुख से वंचित हो जाने के भय से बरनाला सरकार, केन्द्रीय सरकार के इशारे पर 'आतंकवाद से सख्ती से निपटने' के नाम पर खुले रूप से दमन का सहारा ले रही है। बिना सोचे समझे व्यापक रूप से गिरफ्तारियां की जा रही हैं। पिछले दिनों 'आल इण्डिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन' ने अपनी मांगों के समर्थन में शांतिपूर्ण 'रास्ता रोको' आन्दोलन की घोषणा की थी। बरनाला सरकार ने इस आन्दोलन को कुचलने के लिये जिस प्रकार के हथकंडे अपनाए, फेडरेशन के नेताओं की बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां करायीं, वह न केवल गैर-जनवादी बल्कि गैर जिम्मेदाराना व अनैतिक भी है। बरनाला सरकार को समझना होगा कि दमन से स्थिति की गम्भीरता और भी बढ़ेगी तथा तनाव उत्पन्न होगा। किसी भी राजनीतिक समस्या का समाधान दमन द्वारा कभी नहीं किया जा सकता। फेडरेशन की मांगों का राजनीतिक समाधान ढूंढ निकालना होगा। यदि समाजविरोधी तत्व अथवा फेडरेशन के कार्यकर्ता पाकिस्तान से विशेष प्रशिक्षण लेकर पंजाब में गड़बड़ी फैलाने के उद्देश्य से प्रवेश करते ही हैं, जैसा कि सरकार का कहना है तो उनके प्रवेश पर रोक लगाने से सरकार को किसी ने मना नहीं कर रखा है। न ही सरकार के हाथ बन्धे हुए हैं। सीमा सुरक्षा बल की लापरवाही व निष्क्रियता का परिणाम निर्दोष नागरिकों को भुगतना पड़े तो यह पूरी तरह अवांछित व अन्यायपूर्ण होगा। आम पंजाब वासियों की देशभक्ति व धर्मनिरपेक्षता पर सन्देह करना भी अनुचित है। यह भी सच है कि गलत राजनीति के कारण जिन पर दमनचक्र चलता है, उनके पक्ष में लोगों में कुछ न कुछ सहानुभूति भी उत्पन्न होती है। अतः यदि 'आल इण्डिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन' की मांगें जायज हैं तो उन्हें मान लेने में हर्ज ही क्या है, और यदि उनकी मांगें अनुचित हैं तो उन्हें लोगों के सामने राजनीतिक रूप से नंगा किया जाना चाहिये।

पिछले दिनों पानी के बंटवारे को लेकर लोकदल के नेता देवीलाल ने हरियाणा के लोगों की भावनाओं का लाभ उठाते हुए, अपनी राजनीतिक छवि को चमकाने के लिये दिल्ली के बोट-क्लब पर प्रदर्शन किया। हो सकता है कि हरियाणा के लोगों में पानी के बंटवारे को लेकर असन्तोष उत्पन्न हुआ हो, उनका असन्तोष जायज भी हो सकता है। लेकिन अपने तुच्छ राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ करना अनुचित व अनैतिक ही नहीं अपराधपूर्ण भी है। उधर हरियाणा के मुख्यमन्त्री अपनी ही पार्टी द्वारा किए गए समझौते को मानने को तैयार नहीं हैं। क्या कांग्रेस (इ) में सचमुच ऐसे साहसी नेता रह गए हैं, जो केन्द्र का विरोध कर सकें? फिर हिन्दी-भाषी और पंजाबी इलाके का सवाल भी उठाया जा रहा है। जिस बात का समझौते में उल्लेख तक नहीं था, उसी पर केन्द्र भागाई हस्तक्षेप करा कर कौन-सी चाल चल रहा है? पंजाब और हरियाणा के बीच युद्ध जैसी स्थिति कौन और किस उद्देश्य से उत्पन्न कर रहा है? हरियाणा और पंजाब के मुख्यमन्त्री— इन दो प्रान्तों के बीच वैमनस्य बढ़ाने और स्थिति को विस्फोटक बनाने के लिये समानरूप से जिम्मेदार हैं। लेकिन इस पूरे घटनाक्रम के दौरान केन्द्र की रहस्यमय चुप्पी का क्या अर्थ है?

पानी और इलाके के बंटवारे को लेकर यदि कुछ विवाद है तो उसका तर्कसंगत समाधान होना ही चाहिये। अकालियों की पुरानी मांग है कि पानी के बंटवारे का मामला किसी निष्पक्ष संस्था अथवा सुप्रीम कोर्ट को सौंप दिया जाए। यह मांग अब तक भी मानी क्यों नहीं गई। क्या केन्द्रीय सरकार, निहित स्वार्थ और स्वार्थी नेता इस क्षेत्र में शांति स्थापित नहीं होने देना चाहते?

गैस पीड़ितों की माँगों को लेकर दिल्ली में विशाल जनप्रदर्शन

नई दिल्ली, 3 जनवरी। 'भोपाल गैस कांड राष्ट्रीय अभियान समिति' ने गैस पीड़ितों की मांगों को लेकर आज एक विशाल जलूस निकाला। भोपाल गैस कांड को हुए पूरा एक वर्ष बीत चुका है। वहां के गैस पीड़ितों के उपचार, पुनर्वास और मुआवजे संबंधी मांगों को लेकर पिछले एक वर्ष से लगातार जबर्दस्त आन्दोलन चलाया जा रहा है। लेकिन सरकार मूक-बहरी की तरह निष्क्रिय बैठी है। एकदम निष्क्रिय हो ऐसा भी नहीं, आन्दोलनकारियों पर लाठी-गोली चलाने और उन पर मनमाने अत्याचार करने के मामले में उसकी सक्रियता और उत्साह देखते ही बनता है। यह देखते हुए अनेक जनसंगठनों ने मिलकर राष्ट्रीय अभियान समिति में गैस पीड़ितों की आवाज तमाम देशवासियों और दिल्ली में बैठे प्रधानमंत्री तक पहुंचाने के लिए, गैस पीड़ितों की मांगों को लेकर देशव्यापी हस्ताक्षर अभियान चलाया। 3 जनवरी को भोपाल के गैस पीड़ितों सहित अन्य हजारों लोग प्रधानमंत्री को ज्ञापन देना चाहते थे। इसकी उन्हें पहले से ही सूचना दी जा चुकी थी। लेकिन जिस समय हजारों प्रदर्शनकारी कतारों की शक्ल में नारों से वातावरण को आन्दोलित करते, अपने-अपने संगठनों के बैनर, नारे और मांग-पट्टिकाएं लिए सुव्यवस्थित ढंग से दिल्ली के महत्वपूर्ण रास्तों से गुजरते हुए बोट क्लब की दिशा में बढ़ रहे थे, उस समय प्रधानमंत्री राजस्थान के राष्ट्रीय अभयारण्य में विहार कर रहे थे। हजारों नगरवासियों ने प्रदर्शनकारियों को प्रशंसापूर्ण नेत्रों से देखा। जलूस की अगुवाई यू.डी.यू.सी. (ले. ना.) के सचिव डा० प्रेम सिंह, जहरीली गैस कांड विरोधी मोर्चे के संयोजक व भोपाल गैस पीड़ितों के विश्वास-पात्र प्रिय नेता डा० आलोक प्रताप सिंह, दिल्ली एन० आर० डी० एस० ओ० के सचिव डा० प्रताप सामल, कमेटी फार प्रोटेक्शन आफ डेमोक्रेटिक राइट्स एण्ड सेकुलरिज्म (CPDRS) के प्रतिनिधि कामरेड बलबीर सिंह, जहरीली गैस कांड विरोधी मोर्चा के डा० अनिल सद्गोपाल, PUCL के श्री इन्द्रमोहन और AFDR के श्री जगमोहन सिंह सहित अन्य जनसंगठनों के नेता कर रहे थे। जुलूस के आगे के अग्रिम भाग में CPDRS, AIDSO, महिला सांस्कृतिक संघ, यू० टी० यू० सी० (लै० सा०) और आल इंडिया खेतिहर किसान मजदूर संगठन (AIKKMF) के बैनर लगे हुए थे।

भारत निर्माण से शुरू हुआ यह जुलूस नौजवान सभा भवन होते हुए वोट-क्लब पहुंचकर एक सभा में परिवर्तित हो गया। श्री इन्द्रमोहन की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाई शुरू हुई। डा० प्रेमसिंह ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा कि सरकार गैस पीड़ितों की मांग को पूरा नहीं करना चाहती। उन्होंने कहा कि यदि आन्दोलन को मात्र प्रदर्शन, ज्ञापन व अनुरोध तक सीमित रखा गया तो गैस पीड़ितों की मांगें पूरी नहीं करवाई जा सकतीं। पिछले एक वर्ष का अनुभव यही बताता है। इन मांगों को मनवाने का एकमात्र रास्ता है, संयुक्त जुझारू संघर्ष। उन्होंने राष्ट्रीय अभियान समिति को विश्वास दिलाया कि यू०टी०यू०सी० (लै० सा०) ऐसे किसी भी संघर्ष में बढ़-चढ़ कर भाग लेगी। डा० आलोक प्रताप सिंह ने यूनियन कार्बाइड की कड़े शब्दों में भर्त्सना करते हुए कहा कि भोपाल गैस कांड मानवता के विरुद्ध किया गया सर्वाधिक जघन्य अपराध है। भारत सरकार के हाथ भी इस अपराध में पूरी तरह रंगे हुए हैं। महिला सांस्कृतिक संघ (एम. एस. एस.) की ओर से भाषण देते हुए डा० प्रो० सुबोध वर्मा ने कहा कि पुनरावृत्ति के रूप में होने वाले ये गैस कांड दुर्घटना मात्र नहीं हैं। ये सरकार और मालिकों की मिली-जुली अपराधपूर्ण गतिविधियों के मुंह बोलते उदाहरण हैं। उन्होंने कहा कि दिल्ली की श्री राम फूड एण्ड फर्टिलाइजर्स इण्डस्ट्रीज (SFFI) को पहले ही खतरनाक करार दे दिया गया था। इस फैक्ट्री से रिसी गैस के कारण दो लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा तथा हजारों अभी भी इसके घातक परिणाम भुगत रहे हैं।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

बुर्जुआ जनतन्त्र - . . .

पांचवें अंक से आगे

विरोधी पार्टियों और प्रैस की भूमिका

द्वंद्वात्मक वस्तुवाद के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव समाज के विकास के नियम की व्याख्या करते हुए एंगेल्स अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Anti Duhring' में हमारा ध्यान ऐतिहासिक सत्य के इस पहलू की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं : "सभ्यता में आगे बढ़ा हुआ हर कदम स्वतन्त्रता की दिशा में एक कदम है।" इस कथन के अर्थ और महत्व का विश्लेषण करते हुए एंगेल्स ने दिखाया कि "स्वतंत्रता प्राकृतिक नियमों से मुक्त हो जाने का स्वप्न मात्र नहीं है, बल्कि स्वतंत्रता का अर्थ है उन प्राकृतिक नियमों का ज्ञान; तथा इन नियमों को व्यवस्थित ढंग से एक निश्चित दिशा में संचालित करना..........अतः स्वतन्त्रता का अर्थ है नैसर्गिक आवश्यकता की समझ पर आधारित बाह्य प्रकृति तथा स्वयं पर नियंत्रण। अतः यह अनिवार्य रूप से ऐतिहासिक विकास की ही उपज है।"

(फ्रेडरिक एंगेल्स 'एंटीड्यूरिंग' पृ० 157, द्वितीय संस्करण एफ० एल० पी० एच० मास्को)

'स्वयं पर नियंत्रण' से एंगेल्स का अभिप्राय मात्र 'स्वनियंत्रण' नहीं था, बल्कि उनका अभिप्राय था समस्त सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक संबंधों पर समग्र रूप से मानव का नियंत्रण। इस प्रकार सामाजिक जीवन में व्यवस्था उत्पन्न करके मानव को आगे आने वाले कल की स्थायी चिन्ता से मुक्ति दिलाई जा सकती है। यह चिन्ता उत्पादन प्रणाली की उस अराजकता के कारण होती है, जो हमें इन पूंजीवादी समाजों में दिखाई देती है, जहां उत्पादन, समाज की श्रम-शक्ति का शोषण कर अधिकतम मुनाफा अर्जित करने की, पूंजीवादी वैयक्तिक प्रवृत्ति के वश बंधा हुआ है।

इस युग के विशिष्ट मार्क्सवादी दार्शनिक कामरेड शिवदास घोष ने हमें यह अमूल्य शिक्षा दी है, जिससे मानव द्वारा सच्ची स्वतंत्रता व मुक्ति हासिल करने के लिए ऐतिहासिक मार्ग का स्पष्ट ज्ञान होता है। कामरेड घोष ने बताया कि पूंजीवादी शोषणमूलक उत्पादन व्यवस्था के उन्मूलन से युक्त समाजवादी समाज की स्थापना के साथ, बुर्जुआ वर्गों की तुलना में, मानव की स्वाधीनता व स्वतंत्रता निश्चय ही काफी बढ़ जायेगी। लेकिन जब तक राज्य का अस्तित्व रहेगा व्यक्ति-इच्छा पर इसका दबाव भी रहेगा। समाजवादी समाज में सांस्कृतिक क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया के माध्यम से राज्य और व्यक्ति के बीच विरोधात्मक संबंध (Antagonistic relation) को मित्रतात्मक संबंध (Non-antagonistic relation) में तब्दील करने के संघर्ष के फलस्वरूप व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिये व्यक्ति का संघर्ष एक उच्चतर ऐतिहासिक स्तर में पहुंच जायगा। समाजवादी समाज में इस संघर्ष की सफलता का वस्तुगत आधार इस बात में निहित है कि राज्ययंत्र (State Machinery) पर ऐसे वस्तु वर्ग का कब्जा नहीं होगा, जिसके विरुद्ध लोगों को अपनी स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करना पड़ता है। अतः समाजवादी समाज में राज्य और व्यक्ति के बीच विरोधात्मक संबंध का मित्रतात्मक संबंध में रूपांतरण राज्य द्वारा उत्पीड़न के खात्मे और अन्ततः राज्य के एक संस्था के रूप में विलुप्त हो जाने की दिशा में एक भारी बढ़ा हुआ कदम होगा।

अतः मानव द्वारा स्वतंत्रता की कैसी भी उपलब्धि ऐतिहासिक रूप से सामाजिक विकास तथा भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ ओत-प्रोत रूप से जुड़ी हुई है। इतिहास भी इस वैज्ञानिक नियम की पुष्टि करता है। जो कोई भी बुर्जुआ जनतन्त्र के विकास तथा इसके युग के वर्तमान दौर के इतिहास को समझना चाहता है, उसके सामने यह वैज्ञानिक नियम उजागर हो कर ही रहेगा। यह बुर्जुआ जनतन्त्र बुर्जुआ निजी संपत्ति के संबंध के वस्तुगत आधार पर बुर्जुआ जनवादी क्रांति के एक विशेषस्तर पर ऐतिहासिक रूप में प्रकट हुआ। इसके साथ ही साथ विशेष व्यक्ति अधिकारों व व्यक्ति-स्वतंत्रता का वैधानिक परिप्रेक्ष्य भी अस्तित्व में आया, जिसके बारे में बुर्जुआजी ने दावा किया था कि यह मानव के लिए नैसर्गिक है। यह उस सामंतवादी की स्वेच्छाचारी सत्ता का प्रतिवाद (anti thesis) था, जिसका राजनीतिक ऊपरी ढांचा राजतंत्र (Monarchy) था।

स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित प्रारंभिक पूंजीवाद का ऊपरी ढांचा (Superstructure) व्यक्तिगत आजादी और व्यक्ति स्वतंत्रता से निर्मित हुआ था।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के राजनीतिक ऊपरी ढांचे (Political Superstructure) व बुर्जुआ जनतंत्र के विकास के इतिहास से ज्ञात होता है कि व्यक्ति पूर्ववर्ती अर्थव्यवस्था व सामाजिक बंधनों की बेड़ियों से ही मुक्त नहीं हुआ था, बल्कि यह मुक्ति व्यक्तिगत स्वतंत्रता, व्यक्तित्व की गरिमा तथा व्यक्ति की सामाजिक व राजनीतिक समानता के रूप में प्रकट हुई थी। यदि प्रारंभिक पूंजीवाद की इन उपलब्धियों के प्रति किसी को सन्देह है, तो वह इतिहास के पन्ने पलट कर देखे। उसे इस तथ्य पर भी ध्यान देना होगा कि आज संकट के इस दौर में मरणासन्न पूंजीवाद और फासीवाद सैद्धांतिक और वैधानिक रूप से तथा अन्य तरीकों से व्यक्ति अधिकार और व्यक्ति स्वतंत्रता को नष्ट करने की आवश्यकता अनुभव कर रहा है। इससे समाज विकास के द्वंद्वात्मक वस्तुवादी नियम की सच्चाई की पुष्टि होती है। इस बात को और भी गहराई से समझने के लिये आइये, इतिहास के कुछ पन्ने उलट कर देखें।

इतिहास से ही पता चलता है कि एक वर्ग के रूप में बुर्जुआजी के हित और उसकी ऐतिहासिक भूमिका की दृष्टि से यह अनिवार्य था कि वह पुरानी सामंती समाज व्यवस्था को नष्ट करे। क्योंकि विकास के एक विशेष स्तर में उत्पादक शक्तियों के विकास की सामाजिक चाह और पुराने उत्पादन संबंधों के बीच तीव्र अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गया था। इस अंतर्विरोध का समाधान पुराने सामंती उत्पादन संबंधों के अन्तर्गत असंभव था। सामंती समाज में तमाम उत्पीड़ित वर्गों में सर्वाधिक प्रभावशील और अगुवा वर्ग होने के कारण बुर्जुआजी ही सामाजिक क्रान्ति के अगुवा दस्ते के रूप में सामने आए। इस क्रांतिकरण की परिणति समाज के अन्य वर्गों पर बुर्जुआ वर्ग के आधिपत्य की सुरक्षा करने वाली मजबूत बुर्जुआ राष्ट्रीय राज्य की स्थापना में हुई। अतः बुर्जुआ जनतन्त्र एक वर्ग के रूप में बुर्जुआ वर्ग की तानाशाही है। यह उत्पादक शक्तियों के विकास के एक विशेष स्तर में बुर्जुआ जनतांत्रिक क्रांति की ऐतिहासिक उपज के रूप में प्रकट हुई। इसके उद्भव का एक अन्य कारण था, वस्तुगत व आत्मगत दोनों ही प्रकार के उत्पादन के विकास की सामाजिक चाह।

लेकिन अलौकिक राज्य तंत्र के सहारे अपना वर्ग आधिपत्य बनाने के पहले बुर्जुआजी को मरणासन्न सामाजिक शक्तियों, सामंती प्रतिक्रिया, राजा के दैवी अधिकार तथा सामंती बंधनों के विरुद्ध बड़े समय तक कठिन अनवरत संघर्ष चलाना पड़ा था।

यह लड़ाई छेड़नी पड़ी, इसीलिए एक बार फिर सांस्कृतिक, आदर्शगत व नैतिक क्षेत्र में समाज विकास के वैज्ञानिक नियम के रूप में द्वंद्वात्मक वस्तुवाद की वैधता की पुष्टि होती है। जिन प्रचलित आर्थिक, राजनीतिक, आदर्शगत व नैतिक नियमों ने आदमी में राजशक्ति के सामने सर झुकाने की भावना भरी हुई थी, तथा राजशक्ति के स्वर्ग को जीवित रखने के लिये जो नियम बना रखे थे, उन सब की, सामाजिक प्रगति और तर्क की कसौटी पर पुनः जांच करनी पड़ी थी। उन नियमों की वैधता पर प्रश्नचिह्न लगाने पड़े थे।

राजशक्ति (Authority) के सामने समर्पण की हजारों वर्ष पुरानी मानसिकता को चुनौती देना बच्चों का खेल नहीं था। राजशक्ति के सामने सर झुकाने की यह प्रवृत्ति समाज-विकास की राह में सबसे बड़ी बाधा थी। जब वस्तुगत व आत्मगत दोनों ही प्रकार का उत्पादन रुक गया था; जब आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, आदर्शगत व नैतिक हर क्षेत्र में गहन संकट उत्पन्न हो रहा था; जब आदमी का मस्तिष्क धर्मांधता और रूढ़िवाद के संकीर्ण दायरे में कैद था; उस समय परिवर्तन के लिये आदमी में सार्वभौमिक गतिशीलता लाना आसान काम नहीं था।

सामन्ती समाज में राजा, वैधानिक रूप से सर्वशक्तिसम्पन्न, कानून से ऊपर, एक शक्तिपुंज होता था। उसका आदेश ही कानून था। उसकी इच्छा ही कानूनी निर्णायक थी। राजा की शक्ति के समानान्तर दूसरी शक्ति चर्च की थी, जो कानूनी पोप के अधीन थी। इस प्रकार मनुष्य के सिर पर राजा के विशेषाधिकार और पोप के निर्देशों की दो तलवारें लटकती रहती थीं। सामन्तों के इस निरंकुशतावाद के रक्षकों की इतिहास में कभी कमी नहीं रही है। अतः पोप और राजा के शासन की वैधता को उचित ठहराने वालों की भी कोई कमी नहीं थी।

सामान्य रूप से दिया जाने वाला तर्क यह था — जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में सूर्य विभिन्न आकाशीय पिंडों का नियमन और नियन्त्रण करता है, उसी प्रकार इस लोक में भी नियमन और सामाजिक अनुशासन को बनाए रखने के लिये ऐसी ही शक्ति की आवश्यकता है। राजा ऐसी शक्ति था। निरंकुश शक्ति उसे दैवी अधिकार के रूप में प्राप्त थी। जिन पर वह शासन करता था, वह उनके प्रति जवाबदेह नहीं था। वह कानून से ऊपर था, क्योंकि 'राजा गलती कर ही नहीं सकता था।'

क्रमशः

प्रस्तावित राष्ट्रीय शिक्षा नीति–शिक्षा की मूल धारणा की ही विरोधी

इस वर्ष केन्द्रीय सरकार ने नई राष्ट्रीय नीति तैयार करने की पृष्ठभूमि के रूप में 'शिक्षा की चुनौती' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। इस पुस्तक में बड़ी चालाकी के साथ कुछ ऐसे सुझाव शामिल किए गए हैं, जिन्हें देखकर देश के सभी लोगों ने, और विशेषकर शिक्षाविदों ने गहरी चिन्ता व्यक्त की है। ऊपर से देखने में इस पुस्तक की प्रस्तावना और भाषा खूब मोहक लगती है। आज आजादी के 38 वर्ष के बाद देश में शिक्षा की जो अवस्था है, वह किसी से छिपी नहीं है। इसे छिपाने का और कोई उपाय भी नहीं है। शायद इसे समझते हुए ही 'शिक्षा की चुनौती' में लोगों को आगे चलकर दिग्भ्रमित करने के लिये वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की कमियों, तथा इस क्षेत्र में अब तक की सभी सरकारों की असफलता की कहानी खूब खोलकर कही गई है। इसे पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो आम आदमी के मन की ही बात कही जा रही है। लगता है मानो अब तक की सभी सरकारों की असफलता के कारण का पता लगाते हुए, पर्याप्त सोच-विचार करने के बाद ही सरकार ने ये प्रस्ताव इस पुस्तक में शामिल किये हैं। लेकिन इन प्रस्तावों के पीछे वास्तविक कुछ और ही है। इस पुस्तक में 38 वर्ष की असफलता को स्वीकार करते हुए जनमानस को इन प्रस्तावित नई शिक्षानीति के अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया है। अतः इन सरकारी सुझावों का विश्लेषण करने और इन पर विचार करने से पहले लोगों को इस मानसिकता से मुक्त होना पड़ेगा।

सबसे पहले यह आवश्यक है कि यदि हमें किसी भी विषय से संबंधित सत्य की धारणा पर पहुँचना है, तो उस विषय के संबंध में देश, काल, पात्र की वास्तविक परिस्थिति के आधार पर ही विचार-विश्लेषण करना होगा। देश की वास्तविक परिस्थिति से अलग रख कर विचार करना, देखने-सुनने में चाहे कितना ही अच्छा क्यों ना लगे, इसका दूरगामी परिणाम घातक ही सिद्ध होगा।

एक जनतांत्रिक देश में किस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था उचित है, शिक्षा-क्षेत्र में किस प्रकार के मूल्यबोध लाने होंगे, दृष्टिकोण और उद्देश्य क्या होना उचित है, इस विषय में सर्वहारा के महान नेता कामरेड शिवदास घोष ने कहा था—"देश की जनता व जनतन्त्र-प्रिय व्यक्तियों को ऐसे शैक्षणिक सुधारों के लिए धारावाहिक संघर्ष करना होगा, जिससे शिक्षा सही अर्थों में धर्म निरपेक्ष, वैज्ञानिक व धर्म निरपेक्ष बन सके साथ ही साथ सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति के जनतांत्रिक सिद्धान्तों से मेल खा सके।" कोई भी जनतन्त्रप्रिय व्यक्ति शिक्षा-सम्बन्धी इस धारणा को अस्वीकार नहीं कर सकता। अब यदि 'शिक्षा की चुनौति" नामक पुस्तक में दिए गए सरकारी प्रस्तावों का विश्लेषण करके देखा जाए तो पता चलेगा कि, इन प्रस्तावों का उद्देश्य कुछ और ही है।

इससे पहले भी हमारे देश में अनेक बार शिक्षा-सुधार की बातें हुई हैं। हर बार एस० यू० सी० आई० ने विश्लेषण करके यह दिखाया कि देश में संकटग्रस्त पूंजीवाद की रक्षा करने के लिये, शिक्षित बेरोजगारों की संख्या को कम करने के उद्देश्य से, शिक्षा के अवसरों को संकुचित करना तथा सुनियोजित ढंग से शिक्षा-क्षेत्र में हर प्रकार के मानवीय मूल्यबोधों को नष्ट कर देना ही इन सब कथित सुधारों का लक्ष्य था। इस बार भी 'शिक्षा की चुनौती' में प्रस्तावित सुझावों का असल उद्देश्य यही है। इस बार अन्तर सिर्फ इतना है कि बड़ी-बड़ी प्रगतिशील बातों की आड़ में इस शिक्षा नीति को लागू करने की कुचेष्टा की जा रही है।

शिक्षा-व्यय का दायित्व छिपाना

सरकारी प्रस्ताव एक बड़े झूठ के साथ शुरू होता है। इस पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण के पृष्ठ 72 पर कहा गया है कि "आजादी के बाद राष्ट्रीय सम्पदा का एक बड़ा अंश शिक्षा की मद पर खर्च किया जाता रहा है" जबकि हम जानते हैं कि शिक्षा पर कुल राष्ट्रीय आय का मात्र 3% खर्च किया जाता है। दुनिया के अधिकांश देशों की तुलना में यह व्यय बहुत कम है। काफी दिनों से यहाँ जनता मांग कर रही है कि सरकार शिक्षा की मद पर अधिक धन राशि लगाए, तथा शिक्षा के खर्च की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले, वहीं सरकार नए प्रस्तावों से शिक्षा-व्यय के नैतिक दायित्व से पूरी तरह छुट्टी पा लेना चाहती है। पृष्ठ 89 पर कहा गया है कि माध्यमिक स्कूलों एवं 'इन्स्टिट्यूशन ऑफ एक्सीलेन्स' का खर्च केन्द्र व राज्य सरकारें वहन करेंगी। अन्य शिक्षा प्रतिष्ठानों को चलाने तथा पूरे छात्र धारा (General run of the students) को शिक्षित करने के लिये अन्य स्रोतों से धन संग्रह करने की बात कही गई है। इसके लिये व्यक्तिगत दान लेने तथा नए कर लगाने का प्रस्ताव रखा गया है। यह बात सही है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले देश के लोगों के लिये शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए शिक्षा-प्रेमी व्यक्तियों ने लाखों रु० दान किए थे। गांवों और शहरों में अनेक विद्यालय इसी प्रकार स्थापित हुए थे। उस समय देश में शासन करने वाली साम्राज्यवादी सरकार नहीं चाहती थी कि आम जनता तक शिक्षा का प्रकाश पहुँचे, अतः उन्होंने अपनी शिक्षा नीति भी इसी ढंग से तैयार की थी, जिससे अधिक से अधिक लोग अशिक्षा के अंधकार में भटकते रहें। यही कारण था कि उन दिनों अनेक देश प्रेमी व्यक्तियों ने देश के लोगों में शिक्षा का प्रसार करने हेतु इसके व्यय का दायित्व अपने ऊपर स्वेच्छा से ही ले लिया था लेकिन आज तो यहाँ विदेशी शासन नहीं है, फिर क्यों सरकार देश की जनता की शिक्षा पर खर्च करने के अपने नैतिक दायित्व से कन्नी काट रही है।

दोहरी शिक्षा प्रणाली

सरकार शिक्षा को स्पष्ट रूप से दो भागों में बांट देना चाहती है। एक है सरकार के संरक्षण में चलने वाली अभिजात वर्गीय शिक्षा और दूसरी साधारण शिक्षा। साधारण शिक्षा पर सरकार द्वारा कुछ खर्च नहीं किया जाएगा। अभिजात वर्ग के सम्पन्न विद्यार्थियों के लिए सरकार 'मॉडल स्कूल' तथा 'सेन्टर्स ऑफ एक्सीलेन्स' (Centres of excellence) स्थापित करेगी, जिनमें हर प्रकार की आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। यह तर्क दिया गया है कि ये 'मॉडल स्कूल' साधारण विद्यालयों के लिए आदर्श का कार्य करेंगे, और ये साधारण स्कूल इन 'मॉडल स्कूलों' से प्रेरणा लेकर शिक्षा के स्तर को (बिना सरकारी व्यय के) ऊंचा उठाने में सहायक सिद्ध होंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह दोहरी प्रणाली समाज में पहले से ही व्याप्त विषमता को और भी गम्भीर बना देगी। आधुनिक सामन्तों के शिक्षानीति का द्वार एकदम से लिए बन्द कर दिया जाएगा। देश के वर्तमान शासक शिक्षा प्रदान करने को राष्ट्रीय सम्पदा का दुरुपयोग मानते हैं। शिक्षा पाने पर भी नौकरी नहीं मिलती, अतः शिक्षित-बेरोजगार देश के लिए किसी भी रूप में उपयोगी नहीं हैं। मानव को संसाधन मात्र समझने वाली सरकार से इससे उत्तम तर्क सुनने की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। लेकिन समाज-विज्ञान की थोड़ी बहुत समझ रखने वाले लोग भी जानते हैं कि बेरोजगारी का कारण शिक्षा नहीं, बल्कि शोषणमूलक पूंजीवादी व्यवस्था व उसका चरम संकट है।

शिक्षा का अर्थ रोजगार-प्रशिक्षण नहीं

वर्तमान प्रस्ताव में कहा गया है कि रोजगारोन्मुखी शिक्षा पर माध्यमिक स्तर से ही (कक्षा 8 से ही) जोर दिया जाए। तर्क यह दिया गया है कि यदि माध्यमिक शिक्षा पूरी करते ही, विद्यार्थी किसी दस्तकारी विशेष में निपुणता हासिल कर लेता है, तो वह लक्ष्यहीन या उच्च-शिक्षा की अन्धी दौड़ से बाहर आकर जीविकोपार्जन आरम्भ कर जीवन में स्थिर हो सकेगा। इस प्रकार उच्च शिक्षा के लिए वही छात्र रह जाएंगे जो पर्याप्त प्रतिभा से सम्पन्न हैं। घुमा-फिराकर फिर वही बात की जा रही है कि बेरोजगारी के लिये मौजूदा शिक्षा-प्रणाली जिम्मेदार है। लेकिन कौन नहीं जानता कि आज देश में विभिन्न पोलिटेक्निकों (Polytechniques) और औद्योगिक ट्रेनिंग संस्थानों (ITIs) से विभिन्न ट्रेडों में प्रशिक्षण प्राप्त लाखों-लाख नौजवान बेरोजगारी का दंश झेल रहे हैं। यहां तक कि प्रशिक्षित इन्जीनियर व डाक्टर तक बेरोजगार हैं। देश में आज भी तो स्कूलों में रोजगारपरक शिक्षा का प्रोग्राम चल ही रहा है। उसकी स्थिति और परिणामों से कौन अवगत नहीं है। और फिर यदि बढ़ईगिरी, दर्जी का काम, ड्राइवरी, फोटोग्राफी अथवा और कोई काम ही सीखना है, तो किसी बढ़ई अथवा दर्जी के पास रह कर सीखना ही ठीक है, विद्यालय जाने की क्या आवश्यकता है? कहा गया है कि रोजगारोन्मुखी शिक्षा को ठीक से व्यवस्थित करना होगा on the basis of social economic survey and would mainly respond to self employment and service sector needs of the community (पृष्ठ 106) अर्थात् देश में जो कुछ रोजगार के बचे-खुचे अवसर हैं, उनके अनुरूप ही रोजगारोन्मुखी शिक्षा में काट-छांट करनी होगी। इसका मतलब है शिक्षा के माध्यम से ज्ञान तो मिलेगा ही नहीं, रोजगार का प्रशिक्षण भी इच्छानुसार लेने की स्वतन्त्रता नहीं रहेगी।

अनौपचारिक शिक्षा का अर्थ

सामान्य शिक्षा की जो वर्तमान दशा है उसके बारे में कुछ न कहा जाए तो ही अच्छा। 1950 से ही बार-बार वादा किया जाता रहा है कि प्राथमिक शिक्षा को सबके लिये (सार्वजनिक) व निःशुल्क बनाया जाएगा। लेकिन आज तक इस दिशा में सफलता नहीं मिली है। चरम गरीबी और कंगाली में जी रहे अधिकांश देशवासियों के लिये आज भी बच्चे को स्कूल भेजना विलास की बात है। इस पुस्तक में ही स्वीकार किया गया है कि 77 % बच्चे प्राथमिक स्तर में ही स्कूल छोड़ देते हैं। इसका कारण मूलतः गरीबी और बाल-श्रम को मानते हुए भी इस पुस्तक में इसे दूर

करने का कोई उपाय नहीं सुझाया गया है। फिर भी 1990 तक सार्वजनिक साक्षरता का लक्ष्य हासिल करने का सरकार ने एक अनोखा ढंग निकाला है। यह जटिल कार्य परम्परागत तरीकों से तो किया नहीं जा सकता, अतः नई सरकारी सोच के अनुसार अब बच्चों को समय से स्कूल जाने, निर्दिष्ट पाठ्यक्रम पूरा करने अथवा परीक्षा पास करने की आवश्यकता नहीं है। यह शिक्षा का मखौल उड़ाना नहीं तो और क्या है। इस क्रूर मज़ाक को अनौपचारिक शिक्षा (Non Formal Education) का नाम दिया जा रहा है। अनौपचारिक शिक्षा, औपचारिक शिक्षा (Formal Education) की सहायक तो हो सकती है, लेकिन उसका स्थान नहीं ले सकती। देश में 'खुला विद्यालय' और 'खुला विश्वविद्यालय' (open university) के माध्यम से शिक्षा को हर स्तर पर अनौपचारिक बनाया जा रहा है। यह सब शिक्षा के प्रसार की आड़ में किया जा रहा है। जबकि वास्तविकता यह है कि आज गरीब तबके के जो छात्र मौजूदा प्रणाली के तहत शिक्षा प्राप्त कर प्रतियोगात्मक परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर जो कुछ गिनी-चुनी नौकरियां पा भी जाते हैं, इस अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली द्वारा उस अवसर को भी समाप्त करने की चाल चली जा रही है। क्या 'खुला विश्वविद्यालय' का छात्र 'गुणवत्ता केन्द्र' (Centre of Excellence) के छात्र से स्पर्धा में जीत पायेगा? अतः स्पष्ट है कि सरकार अभिजात वर्ग के छात्रों के हित में नौकरियों में स्वतन्त्र प्रतियोगिता को तिलांजलि दे रही है। मात्र इतना ही नहीं आज स्कूल, कालेजों में उन्नत शिक्षा व्यवस्था की मांग को लेकर आंदोलन चलाने का जो सुयोग है, 'खुला स्कूल' तथा 'खुला विश्व-विद्यालय' में वह भी नहीं रहेगा। अर्थात् अनौपचारिक शिक्षा पद्धति लागू करके सरकार शिक्षा समाप्ति पर नौकरी देने के अपने नैतिक दायित्व को ही अस्वीकार कर रही है।

न शिक्षा देंगे न रोज़गार

नौकरी और शिक्षा के बीच सम्बन्ध विच्छेद करने की बात भी कही गई है। एक ऐसा माहौल पैदा करने की कोशिश की जा रही है, मानो भविष्य में नौकरी के लिए डिग्री की आवश्यकता नहीं होगी और जो लोग आज डिग्री के अभाव में अच्छी नौकरियां पाने में असफल रहते हैं, कल वह भी अच्छी नौकरियों में लिया जाने लगेगा। जबकि असल बात यह है कि शोषण मूलक पूंजीवादी व्यवस्था के चलते सरकार बेरोजगारी की विकट समस्या का समाधान कर पाने में असमर्थ है। ऐसे में हर साल लगातार शिक्षित बेरोजगार नवयुवकों की विशाल सेना से सजग आता है। अतः सरकार इन शिक्षित बेरोजगारों की संख्या को सीमित कर देना चाहती है। सारांश यह है कि नौकरी नहीं दे सकते तो शिक्षा भी क्यों दें? इस प्रकार देश की वर्तमान और भावी पीढ़ी को शिक्षा और रोजगार दोनों से ही महरूम रखने की चाल चली जा रही है। देश के लोगों को रोजगार का अधिकार तो दिया ही नहीं गया है, अब उनसे शिक्षा पाने का अधिकार भी छीना जा रहा है। इस 'प्रस्ताव' का एक पहलू यह भी है कि अब तक उच्च पदों में डिग्री की अनिवार्यता के रहते जो थोड़ा बहुत सापेक्ष निष्पक्षता का माहौल था भी, अब डिग्री की अनिवार्यता समाप्त हो जाने पर वह भी समाप्त हो जाएगा। सत्ता लोग अपनी पहुंच के बल पर अपने चाटुकार लोगों को ही नौकरियां दिलायेंगे, और इस प्रकार भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद अब और अपना रंग दिखाएगा।

शिक्षा का तात्पर्य

इस सरकारी पुस्तक में शिक्षा के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया है, वह अत्यधिक घातक है। इस घातक दृष्टिकोण को 'सामाजिक प्रासंगिकता' (Social relevance) की मोहक संज्ञा दी गई है। शिक्षा का जो असल सामाजिक तात्पर्य है, उसके साथ सरकारी दृष्टिकोण तनिक भी मेल नहीं खाता। हम जानते हैं कि मानव सभ्यता की प्रगति के पथ में, हर युग में मानव ने जिन समस्याओं का मुकाबला किया, उन्हीं समस्याओं के समाधान करने के संघर्ष में जिस ज्ञान-भंडार की सृष्टि होती गई, आने वाली पीढ़ियों ने हर युग में इस संचित ज्ञान-भंडार की धरोहर को लेकर ही मानव सभ्यता की प्रगति के रथ को और आगे बढ़ाया है। यह ज्ञान-भंडार हमारे पूर्वजों के संघर्ष और बलिदान द्वारा निर्मित हुआ है। इस पर किसी व्यक्ति अथवा समूह विशेष का एकाधिकार नहीं है। ज्ञान और शिक्षा का यही तात्पर्य है मनुष्य के सर्वांगीण विकास के पथ को प्रशस्त करना। अतः किसी भी देश की शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिये जिसमें मनुष्य की मननशीलता और मनुष्यत्व का विकास अबाध रूप से हो सके। मनुष्य अपने जीवन और सामाजिक जीवन की समस्याओं का तर्कसंगत ढंग से विश्लेषण करते हुए इन समस्याओं की जड़ का पता लगा सके। देश में प्रचलित शिक्षा पद्धति में इस कमी को देखते हुए ही कोठारी शिक्षा आयोग ने कहा था :—

'The malady of our social and cultural life has been further accentuated by this education system which does not inculcate among the students and youths any understanding of ethics and hence any sense of social obligation'.

लेकिन केन्द्रीय सरकार के प्रस्ताव में शिक्षा के इस वास्तविक उद्देश्य की अवहेलना करते हुए, यह चेष्टा की गई है कि शिक्षा व्यवस्था को शोषणमूलक पूंजीवादी व्यवस्था के हित में संचालित किया जाए। मनुष्य का निर्माण करने के लिये शिक्षा के व्यापक विस्तार के स्थान पर, देश में जो कुछ रोजगार के अवसर बचे हैं, उन्हीं के अनुपात में शिक्षा में काट छांट करके तथा पूंजीवादी उत्पादन एवं शोषण को जारी रखने के लिए जितनी तकनीकी व कारीगरी की शिक्षा की ज़रूरत है, उसी को 'शिक्षा की प्रासंगिकता' कह कर, बेकार बताया जा रहा है। प्रस्ताव में कहा गया है कि "कालेज-विश्वविद्यालय के माध्यम से इस देश में पहले समय से जो शिक्षा प्रणाली चली आ रही है, उसका प्रसार एकदम से रोक कर नई कार्यप्रणाली और धारणा पर आधारित नए कालेज और विश्वविद्यालय खोलने होंगे।"

(पृष्ठ 110)

मूल्यविमुखी तथा धर्म-मुखी शिक्षा

आज समाज में नैतिक मूल्यों का जिस तेज़ी से पतन हो रहा है, उससे सभी प्रबुद्ध व्यक्ति चिन्तित हैं। यदि शिक्षा के माध्यम से इन मूल्यों को स्थापित करने का कोई प्रयास होता है, तो उसका स्वागत होना ही चाहिये। लेकिन शिक्षा को मूल्योन्मुखी बनाने के नाम पर सरकार आध्यात्मिकता के तत्व को शिक्षा में प्रवेश कराना चाहती है। कितनी विचित्र बात है, एक ओर तो विज्ञान और तकनीकी की वकालत में बड़ी-बड़ी बातें, देश को इक्कीसवीं सदी में ले जाने की उत्सुकता का प्रदर्शन और दूसरी ओर आध्यात्मिकता (Supernaturalism) का दामन पकड़े रहने की ज़िद; इस आध्यात्म का मतलब जो विज्ञान और वैज्ञानिक चिन्तन प्रक्रिया का मूलतः ही विरोधी है। क्या आत्मा, परमात्मा, मोक्ष और ऐसी ही अन्य अंधविश्वास व कुसंस्कार जनित मनगढ़न्त धारणाओं की नींव पर प्रेक्षण-प्रयोग-जांच (observation, experimentation-verification) तथा तर्क पर आधारित विज्ञान व वैज्ञानिक चिन्तन विकसित हो सकता है? लेकिन यह न समझें कि सत्ताधारी वर्ग व उसके नेता इतने भोले हैं, कि वे इन बातों को जानते नहीं। सब कुछ सोच समझकर, योजनाबद्ध तरीके से किया जा रहा है। विज्ञान के तकनीकी पक्ष तथा अध्यात्म का मिश्रण करके फासीवाद की दार्शनिक नींव (Philosophical Base) तैयार की जा रही है। आधुनिक प्रबन्ध (Management), वाणिज्य, कल-कारखानों को चलाए रखने के लिये जितनी तकनीकी जानकारी की शासक पूंजीपति वर्ग को आवश्यकता है, वह तो देनी ही पड़ेगी, लेकिन सामाजिक जीवन का संचालन करने वाले नियमों को जानने-पहचानने की आवश्यकता नहीं। इन नियमों की समझदारी पैदा हो न हो, इसीलिये आध्यात्म की आवश्यकता है। व्यक्ति व समाज की नियति, सुख-दुख का फैसला एक अलौकिक सत्ता के अधीन है, लोगों के मस्तिष्क में इस बात को ठूंस-ठूंस कर भर देना आज शासक वर्ग के अस्तित्व को बनाए रखने के लिये अनिवार्य हो गया है। ऐसे आध्यात्मिक मूल्य उत्पन्न करने को ही नैतिक शिक्षा का नाम दिया जा रहा है। यदि समाज में इस प्रकार की नैतिकता उत्पन्न हो सकी तो शोषक पूंजीपति वर्ग की लूट, शोषण, अत्याचार व उत्पीड़न की अनैतिकता पर पर्दा पड़ा रह सकेगा। मानव के घोर शत्रुओं के इस दुष्प्रचारित फासीवादी षड्यन्त्र को यदि समय रहते चकनाचूर नहीं किया गया तो देश की भावी सन्तानें और इतिहास हमें कभी क्षमा नहीं करेगा।

औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भिक दौर में जब पूंजीवाद का स्वरूप क्रांतिकारी था, पूंजीवाद ने पुराने धार्मिक मूल्यों, रूढ़ि, अंधविश्वास व धर्म के विरुद्ध जबरदस्त संघर्ष किया था। इस संघर्ष की उपज जीवन की जनवादी पद्धति, धर्मनिरपेक्षता व वैज्ञानिक चिंतन था। इन धारणाओं पर आधारित जो मूल्य और नैतिकता समाज में उत्पन्न हुए थे, निश्चय ही वे पुरानी धर्म व सामन्तवादी समाज-व्यवस्था के मूल्यों और नैतिकता से तुलनात्मक रूप में उन्नत और श्रेष्ठ थे। लेकिन आज विश्व पूंजीवाद अपने चरम संकट के दौर से गुजरते हुए अपनी प्राण रक्षा के लिये उन्हीं पुरानी धारणाओं और गैर-वैज्ञानिक धार्मिक मूल्यों को पुकार रहा है।

शिक्षा संस्थाओं का गैर-राजनीतिकरण और स्वायत्तता हनन

इस पुस्तक में कहा गया है कि राजनीति ने शिक्षा संस्थाओं का वातावरण दूषित कर दिया है, यही वजह है कि शिक्षा का स्तर लगातार गिरता जा रहा है।

आज़ादी की लड़ाई के सुनहरे दिनों पर दृष्टिपात करने से पता चलेगा कि उन दिनों स्कूल-कालेज राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के गढ़ बन गए थे। शिक्षा के गिरते हुए स्तर के लिये राजनीति को ज़िम्मेदार ठहराने वाले यही प्रतिक्रियावादी उन दिनों छात्रों व अध्यापकों का राजनीति में कूदने का साहस नहीं जुटा पाते थे। उन दिनों राष्ट्रीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार के इस दूषित प्रचार को कि छात्रों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, डट कर विरोध किया था। उन दिनों कोई नहीं कह सकता था कि राजनीति शिक्षा के वातावरण को दूषित करती है। उल्टे उन दिनों इतिहास ने देखा कि ज्ञान के हर क्षेत्र में विशिष्ट प्रतिभाएं पुष्पित हो रही थीं। विज्ञान का कोई क्षेत्र हो अथवा साहित्य, संस्कृति व राजनीति, हर क्षेत्र एक-से-बढ़ कर एक प्रतिभाएं उन दिनों

(शेष पृष्ठ 7 पर)

उच्च सर्वहारा संस्कृति और नैतिकता के आधार पर संगठन को और भी शक्तिशाली बनाओ

कामरेड निहार मुखर्जी का आह्वान

(22 नवम्बर 1985 को यू० टी० यू० सी० (लि० सा०) के 17 वें अखिल भारतीय सम्मेलन के अवसर पर प्रतिनिधि सम्मेलन में दिया गया एस० यू० सी० आई० के महासचिव, वरिष्ठ नेता कामरेड निहार मुखर्जी का भाषण)

यह सम्मेलन ऐसे समय में हो रहा है जब देश-विदेश का श्रमिक वर्ग गंभीर और विकट परिस्थिति का सामना कर रहा है। मुझे विश्वास है कि यह सम्मेलन सिर्फ कुछ प्रस्तावों को स्वीकृत करने के लिए ही नहीं बुलाया गया है। मैं जानता हूं कि सम्मेलन के मुख्य प्रस्ताव का मसौदा पहले से ही सभी संबद्ध यूनियनों के पास पहुंच गया था। आप इस बात के महत्व को भी समझते हैं। सामाजिक क्रांति के हर ऐतिहासिक स्तर में, उसकी पूरक सांस्कृतिक क्रांति एक आवश्यक पूर्व शर्त है। पूंजीवाद के मौजूदा दौर में, जब यह अपने विकास के उच्चतम स्तर—साम्राज्यवाद में परिवर्तित हो चुका है, ऐसे में अपने चरम संकट में फंस कर क्रांति की बढ़ती संभावना से त्रस्त होकर क्रांति का मार्ग अवरुद्ध करने के लिए सभी पूंजीवादी देश चाहे वे विकसित हों अथवा पिछड़े हुए, फासीवाद की डगर पर जा रहे हैं। मानव मात्र और सभ्यता के परम शत्रु फासीवाद का मुकाबला करने के लिये मेहनतकश जनता के सभी तबकों में एक दृष्टि कोण वैज्ञानिक रुझान तथा उसकी चेतना और संस्कृति का विकास करने के लिए आन्दोलन छेड़ना परम आवश्यक है। इस अवश्य बुर्जुआ गठबन्धन के खिलाफ इसी रास्ते से मेहनतकश वर्ग के एकजुट संयुक्त आन्दोलन का विकास किया जा सकता है।

साथियो, आप यहां अपने ऐतिहासिक दायित्व को पूरा करने के लिए आवश्यक कार्य (Task) का निर्णय करने के लिए आए हैं। आपको याद रखना होगा कि इस कार्य को पूरा करने के लिए आपको सही वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की योग्यता हासिल करनी होगी। हमें भूलना नहीं चाहिए कि हमारा समाज वर्ग विभाजित समाज है। सर्वहारा दृष्टिकोण, बुर्जुआ वर्ग दृष्टि कोण से एकदम भिन्न है। किसी भी राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मसले का विश्लेषण करते समय आपको यह निर्णय करना होगा कि आप किस वर्ग दृष्टिकोण को अपनाएंगे। सर्वहारा वर्ग ऐतिहासिक रूप से ऐसे मोड़ पर आया है कि यह स्वयं को ही नहीं बल्कि पूरी मानवता को हर प्रकार के मानव द्वारा मानव के शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति दिलायेगा ही। चाहे वह इस बात के प्रति सचेत हो या न हो। अतः आज के युग की प्रगतिशील विचारधारा, सर्वहारा वर्ग दृष्टिकोण के साथ ओत-प्रोत रूप से जुड़ी हुई है। इस सन्दर्भ में यह भी याद रखना होगा कि हालांकि ईमानदारी, लगनशीलता इत्यादि खूब आवश्यक हैं, लेकिन मूल बात यह है कि सही वैज्ञानिक रास्ते पर आगे बढ़ा जाए। इस समाज में हर प्रकार के विचार व्यवस्थाएं पूंजी और श्रम के मूल द्वन्द्व पर आधारित हैं। समाज में जारी वर्ग संघर्ष सर्वहारा के एकाधिपत्य में परिणत होगा। इसके हुए बिना हम मानव द्वारा मानव के शोषण और उत्पीड़न को समाप्त नहीं कर सकते और न ही उस वर्ग विहीन समाज में पदार्पण कर सकते हैं, जहां मानव द्वारा प्रकृति पर विजय के नए क्षितिज खुल जाते हैं।

सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की सही भावना से संचालित होने के लिये, मेहनतकश वर्ग को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को समझने और धारण करने का सचेत प्रयास करना चाहिये। मात्र यही दर्शन हर चीज़ में सर्वांगीण दार्शनिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। श्रमिकों को इस दर्शन के सार को बार-बार सीखना चाहिये तथा हमेशा जीवन के हर क्षेत्र में इसका उपयोग करना चाहिये। जितना ज्यादा श्रमिक दार्शनिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक रूप से सचेत होंगे, शासक पूंजीपति वर्ग के लिये वे उतना ही अधिक खतरनाक सिद्ध होंगे। वर्तमान पूंजीवाद के इस युग में पूंजीपति वर्ग मस्तिष्क के वैज्ञानिक रुझान से ही सर्वाधिक भयभीत होता है। जहां तक मैं जानता हूं आपने इतनी बड़ी रैली संगठित की लेकिन सरकार द्वारा नियंत्रित प्रचार माध्यमों ने इसे पब्लिसिटी नहीं दी। जाहिर है कि यह पब्लिसिटी उनके वर्ग हित के खिलाफ जाएगी।

खुले उद्घाटन अधिवेशन में विशाल जनसभा और उससे पहले हुई विशाल रैली से आपको आत्म-तुष्ट नहीं होना चाहिये। अपनी शक्ति व स्रोत को जानिये, तथा अपनी कमजोरियों को पहचानिये। अपनी कमजोरी का पता लगाकर उसे दूर करने का प्रयत्न कीजिये। क्रांति के मशालवाहकों को अपना राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर ऊंचा उठाने के कार्य में स्थायी रूप से जुड़ जाना होगा।

हमारा देश बहुत विशाल है। विभिन्न भाषा-भाषी और विभिन्न धर्मों व मतों को मानने वाले लोग यहां रहते हैं। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले बुर्जुआ वर्ग ने समाज के जनवादीकरण के कार्य को पूरा नहीं किया, क्योंकि अपने सुधारवादी व समझौतावादी चरित्र के कारण वे क्रांति के भय से ग्रस्त थे। साम्राज्यवादी शासकों के विरुद्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय देश में मजदूर वर्ग की कोई सही पार्टी भी विद्यमान नहीं थी। यही कारण है कि आजादी मिलने के इतने वर्ष बाद भी हम देख रहे हैं कि देश में साम्प्रदायिक संकीर्णता व अलगाववादी हिंसा बार-बार भड़क रही है। यदि आप आंखें खुली रखते हों तो देखेंगे कि इन साम्प्रदायिक संकीर्णतावादी, जात-पात, अलगाववाद, व विघटनकारी दंगों के पीछे कांग्रेस (इ) की केन्द्रीय सरकार का हाथ है। भ्रातृघाती दंगों की भारी कीमत आम लोगों को ही चुकानी पड़ती है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हमें सिखाता है कि द्वन्द्व दो प्रकार का होता है, बाह्य द्वन्द्व और आंतरिक द्वन्द्व। इसमें सन्देह नहीं कि शासक पूंजीपति वर्ग मजदूरों व मेहनतकश जनता के अन्य तबकों के जायज आन्दोलनों को कुचलने की चेष्टा करता है। लेकिन आन्दोलन के अन्दर भी आन्दोलन के शत्रु रहते हैं। छद्म मार्क्सवादी, वर्ग समन्वयवादी अर्थात् पूंजी और श्रम में समझौता कराने वाली शक्तियां, सोशल डैमोक्रेटिक पार्टियों के रूप में आन्दोलन को अन्दर से कमजोर और दिशाहीन करने का कार्य करती हैं। छद्म मार्क्सवादियों के नेतृत्व में चलने वाली प० बंगाल और त्रिपुरा की सरकारों पर नजर डालिये। वे खुले आम वर्ग संघर्ष की जगह वर्ग समन्वय की नीति की वकालत कर रही हैं।

इन राज्यों के मुख्यमंत्री खुले आम घोषणा कर रहे हैं कि, क्योंकि वे सत्ता में हैं अतः मजदूरों को मालिकों के विरुद्ध संघर्ष नहीं छेड़ना चाहिए। मालिकों और मजदूरों के बीच सभी विवादों का निपटारा शांतिपूर्ण ढंग से मेज पर होना चाहिये। इस युग के अनन्य मार्क्सवादी दार्शनिक और यू० टी० यू० सी० (लि० सा०) के भूतपूर्व अध्यक्ष कामरेड शिवदास घोष ने इस खतरे के प्रति चेतावनी देते हुए कहा था कि, "आने-वाले तूफान को पहचाना जा सकता है लेकिन लाल झंडा लेकर चलने वाले ऐसे छद्म मार्क्सवादी को पहचानना आसान नहीं जो वास्तव में मालिक वर्ग की सेवा करता है।" मालिक खुले आम मजदूरों से यह क्यों कहते हैं कि यू० टी० यू० सी० से बचो और CITU में जाओ? इसका कारण स्पष्ट है, मालिक जानते हैं कि CITU उनके हित में काम करती है, और यह भी कि मौजूदा समय में CITU मजदूरों को भ्रमित करने में सक्षम है।

आपको हमेशा याद रखना चाहिये कि ट्रेड यूनियन का विकास इस ढंग से करना है कि वह कम्युनिज्म का स्कूल बन सके। ट्रेड यूनियन आन्दोलन को अर्थवाद, सुधारवाद, वर्ग-समन्वय व संसदवाद के दुष्प्रभाव से मुक्त करना होगा। नव-संशोधनवाद जैसी बुराइयों से बचाते हुए ट्रेड यूनियन को इस प्रकार निर्मित करना होगा कि उन पर राजनीति हावी रहे। आम तौर पर सभी मेहनतकश लोगों को और विशेष-कर मजदूर वर्ग को मार्क्सवाद-लेनिनवाद तथा कामरेड शिवदास घोष के विचारों से शिक्षित करना होगा। उच्च सर्वहारा संस्कृति के आधार पर ट्रेड यूनियन का निर्माण करते हुए ट्रेड यूनियन आन्दोलन को आगे बढ़ाना होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मजदूर वर्ग के सामने मजदूर वर्ग की विश्वव्यापी एकजुटता निर्माण करने का काम है। साथ ही साथ हर प्रकार के संशोधनवाद, सुधारवाद, नव-संशोधनवाद के विरुद्ध अनवरत संघर्ष चलाना होगा, फिर चाहे ये बुराइयां रूस के संशोधनवादी नेतृत्व ने पैदा की हों अथवा चीन के। यह वैचारिक संघर्ष पार्टी-पार्टी अथवा राज्य-राज्य के संबंधों को नुकसान पहुंचाए बिना लेनिनवादी शिक्षा के आधार पर चलना चाहिए। और इस प्रकार आमतौर पर साम्राज्यवाद और विशेषकर स्टार वार व आणविक युद्ध की धमकी देने वाले अमरीकी साम्राज्यवाद पर शक्ति चोट देनी होगी। इस प्रकार सभी प्रकार के शांतिवादी (Pacifist) शक्तियों से जुड़ते हुए मानव मात्र तथा सभ्यता की प्रगति के रथ को आगे बढ़ाना होगा। राष्ट्रीय क्षेत्र में केन्द्रीय व राज्य सरकारों की मजदूर विरोधी और जन विरोधी नीतियों के विरुद्ध देश की सभी वामपंथी, जनवादी ताकतों तथा विरोधी पार्टियों को संयुक्त मंच पर लाने का काम है। छद्म मार्क्सवादियों के नेतृत्व में चलने वाली ट्रेड यूनियनें चाहे कितने भी रोड़े अटकाएं आपको अपने प्रयासों में ढील नहीं आने देनी चाहिए।

साथियो, प्रतिनिधि सम्मेलन में विभिन्न मुद्दों पर विचार करते समय आपको सही वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सही कार्य प्रणाली अपनानी होगी। याद रखें निर्णय सिर्फ लेने के लिये नहीं होते, उन्हें कार्यरूप देना होता है। जब आप यहां से वापस जाएं तो इस संदेश को मेहनतकश लोगों में फैला दें तथा इतिहास प्रदत्त कार्य को पूरा करने के लिए गम्भीरतापूर्वक आगे बढ़ें। □

(पृष्ठ 5 का शेष)

विकसित हुई । इसके कारण विदेशों तक में भारत देश का मान-सम्मान बढ़ा । आज सब कुछ उल्टा क्यों हो रहा है ? इसका कारण है सत्ताधारी कांग्रेस (इ) द्वारा राजनीति का अपराधीकरण । गत वर्ष NSUI के राष्ट्रीय छात्र सम्मेलन में, तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गांधी व वर्तमान प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की ठीक आंखों के सामने, नागपुर में जो कुछ हुआ, इस वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष में मास्को में भारतीय छात्र प्रतिनिधियों ने जो गुल खिलाए, उनके कारण हर सज्जन नागरिक का सर शर्म से झुक गया । स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये जूझने वाले लोगों की राजनीति देश के आम लोगों के हितों के लिये मर-मिटने की राजनीति थी । वह राजनीति उच्च नैतिक मूल्यों पर आधारित राजनीति थी । स्वभावतः लोगों के उन्नत चरित्र चेतना और संस्कृति के विकास में सहायक थी । यही कारण है कि उस राजनीति ने महान चरित्र के लोगों को जन्म दिया । आज शासक वर्ग की राजनीति करने वाली पार्टियों का जनता के हितों से कोई सरोकार नहीं, इनके सामने कोई उच्च आदर्श भी नहीं । इस राजनीति का एकमात्र आधार है घृणिततम आकांक्षाएं, पद-लिप्सा तथा निकृष्ट व्यक्ति-स्वार्थ । आज यही लोग भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलते हैं तथा शिक्षण संस्थानों से राजनीति को बाहर निकालने की बात करते हैं । सर्वहारा के महान नेता कामरेड शिवदास घोष ने कहा था 'राजनीति एक उच्च-स्तर की हृदयवृत्ति है' । लेकिन ये लोग हर बुराई की जड़ राजनीति को बताते हैं । छात्रों से कहा जाता है, अपना ध्यान पढ़ाई में लगाओ, तुम्हें राजनीति से क्या लेना । सरकारी कर्मचारियों का जो शिक्षित वर्ग है, उसे राजनीति में भाग लेने का अधिकार ही नहीं दिया गया है । फिर राजनीति कौन करेगा ? अशिक्षित, ठग, और लुटेरे ! आज यही हो रहा है । पिछले चार दशकों से देश की राजनीति कांग्रेस (इ) की जकड़बन्दी में रही है । यह पार्टी खुलकर अनैतिक आचरण, तानाशाही प्रवृत्तियाँ, हिंसा, हत्या भ्रष्टाचार, कायरतापूर्ण हमलों तथा सरकारी व गैर-सरकारी गुण्डागर्दी को राजनीति में बढ़ावा दे रही है । इस पार्टी के हाथों में राजनीति की क्या दुर्दशा हो गई है ! यही पार्टी राजनीति की सब बुराइयों की जड़ बताकर बदनाम करती है । "राजनीति को बदनाम करना भी एक भिन्न प्रकार की निकृष्ट राजनीति है । यह मरणासन्न पूंजीवाद की राजनीति है ।" इसका उद्देश्य है उच्च नीति-नैतिकता और संस्कृति पर आधारित क्रांतिकारी राजनीति को हतोत्साहित करना । एक तरफ तो शासक दल शैक्षिणिक संस्थानों का अराजनीतिकरण करने की बात करता है, वहीं दूसरी ओर अपने जी-हुजूर, चाटुकारों को शिक्षा संबंधी नीति-निर्धारण करने वाली समितियों में शामिल कर रहा है । श्रीमती ममता बनर्जी जो कांग्रेस (इ) संसद सदस्या हैं, तथा जिन के पास एक जाली अमरीकी विश्वविद्यालय की डिग्री है, श्री राजीव गांधी द्वारा विश्वभारती विश्वविद्यालय की काउंसिल में नामजद की गई हैं । हाल ही में बिहार के छः उपकुलपतियों तथा छः प्रोवाइसचांसलरों को गवर्नर (अपने पार्टी कांग्रेसी) ने अपने इस्तीफे देने का आदेश दिया है । कारण स्पष्ट है, इन लोगों ने गवर्नर साहब की अन्याय पूर्ण बातों को मानने से इंकार कर दिया था । ऐसा क्यों हो रहा है ? शैक्षणिक संस्थानों की स्वायत्तता का हनन क्यों किया जा रहा है ? कालेजों को विश्वविद्यालय से असम्बद्ध करने की बात क्यों की जा रही है ? विद्यार्थियों से यूनियन बनाने का अधिकार क्यों छीना जा रहा ? विश्वविद्यालय परिसरों को पुलिस छावनियों में क्यों तब्दील किया जा रहा है ? यह सब शिक्षण - संस्थानों को राजनीति से छुटकारा दिलाने के नाम पर किया जा रहा है । हालांकि इन सब चालों का एक मात्र उद्देश्य है हर प्रकार के विरोध को कुचल देना ।

शिक्षा बचाओ- फासीवाद को परास्त करो

आज शिक्षा पर चौतरफा हमला किया जा रहा है । शिक्षा के अवसरों में जबरदस्त कटौती की जा रही है । शासक वर्ग लोगों को शिक्षित करने के अपने दायित्व से छुटकारा पा लेना चाहता है । शिक्षा पद्धति को ऐसे सांचे में ढाला जा रहा है, जिससे वैज्ञानिक दृष्टिकोण समाप्त हो जाए तथा धर्मांधता व संकीर्ण मनोवृत्तियों को बढ़ावा मिले, जिससे शासक वर्ग के फासीवादी मनसूबे बिना किसी विरोध के कामयाब हो सकें । नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का संक्षेप में यही सार है ।

क्या हम इस षड्यन्त्र के सामने घुटने टेक देंगे । यह वह षड्यन्त्र है जिससे देश की भावी पीढ़ियों का भविष्य अन्धकारमय हो जाएगा । आइये, हम इस घातक नीति के विरुद्ध एक जुट दीर्घकालीन जुझारू संघर्ष छेड़कर देश के भविष्य को बरबाद होने से बचा लें ।

(पृष्ठ 1 का शेष)

ईरान, इराक और लेबनान, इथाइल और फिलस्तीन हों अथवा अपनी राष्ट्रीय आजादी के लिए संघर्षरत निकारागुआ अथवा ग्रेनाडा हर स्थान पर युद्ध को लगातार बरकरार रखा गया है । इसी काम में अब सोवियत शामिल हो गया है । इस प्रकार अमरीकी साम्राज्यवाद विश्व को तेजी से एक और महायुद्ध के कगार पर धकेल रहा है ।

जब तक साम्राज्यवाद रहेगा, युद्ध का खतरा भी रहेगा-इस कथन में आज भी उतनी ही सच्चाई है, जितनी पहले थी । इस पर भी आज विश्व-शक्तियों का संतुलन युद्ध की अपेक्षा शांति के पक्ष में अधिक है । यह होते हुए भी आज शांति स्थापित करने की जितनी संभावना है, युद्ध की भी उतनी ही संभावना है । ये दोनों संभावनाएं ही समान और वास्तविक हैं । अतः विश्व शांति स्थापित करने के लिए आज पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देशों में पूंजीवाद व साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलनों को तेज करते हुए विश्व शांति आन्दोलन को मजबूत बनाना होगा । दुनियां की शांतिप्रेमी जनता को लामबंद करके युद्ध के विरोध में खड़ा करना होगा, तथा अपने सभी वैचारिक मतभेदों के बावजूद समाजवादी देशों को मिल कर संयुक्त रूप से अमरीकी साम्राज्यवादी मनसूबों को नाकाम-याब करना होगा, विश्व मजदूर आन्दोलन का विकास भी शांति के पक्ष में करना होगा । ये सभी कार्य विश्व शांति आन्दोलन को कामयाब बनाने में सहायक होंगे ।

कांग्रेस (इ) गुण्डों द्वारा उड़ीसा में एस० यू० सी० आई० आफिस पर हमला

आज एस० यू० सी० आई० ने देश के कोने-कोने में जनजीवन की समस्याओं को लेकर, अपने अपने बूते पर देश के इतिहास में जनांदोलन संगठित करने का अध्याय शुरू कर दिया है । अपने सच्चे हमदर्द और रहनुमा के रूप में लोग इस पार्टी की पहचान पा रहे हैं और इसके नजदीक एकत्र हो रहे हैं । देश की एकमात्र क्रांतिकारी पार्टी की बढ़ती लोकप्रियता से बौखला कर सरकारें और प्रशासन जनविरोधी और गुण्डा तत्वों की सहायता से इन आंदोलनों को कायराना हमलों का शिकार बना कर पार्टी के बढ़ते प्रभाव को कम करने का दुष्प्रयास कर रहे हैं । शायद वे नहीं जानते कि सच्चे क्रांतिकारी अपराजेय ही मिट्टी के बने होते हैं ।

उड़ीसा में पार्टी के नेतृत्व में सुन्दिनगढ़ क्रोमाइट-आयरन ओर (O.e) खदान, तथा TISCO की मजदूर विरोधी नीतियों के खिलाफ जबरदस्त आन्दोलन चलाया गया । आन्दोलन से घबरा कर मालिकों ने प्रशासन से मिल कर कांग्रेस (इ) के गुण्डों द्वारा गत 9 नवंबर को सुन्दिनगढ़ स्थित एस० यू० सी० आई० आफिस पर कायरतापूर्ण हमला कराया । आफिस में व्यापक तोड़-फोड़ की गई । महत्वपूर्ण कागजात नष्ट कर दिये तथा बिजली का कनेक्शन काट दिया गया । उस समय आफिस में उपस्थित AIDSO के कामरेड गौरांग नायक पर भी कातिलाना हमला किया गया ।

इस घटना की फौरन पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट लिखाई गई । लेकिन पुलिस ने अपराधियों को पकड़ने की कोई चेष्टा नहीं की । कांग्रेस (इ) के गुण्डों के इस कारनामे के कारण जनता में भारी आक्रोश उत्पन्न हुआ । उड़ीसा के गवर्नर को इस संबंध में ज्ञापन दिया जा चुका है, जिसमें मांग की गई है कि वे इस मामले की व्यक्तिगत तौर पर छान-बीन करें ।

भूल-सुधार

हमें खेद है कि 'सर्वहारा दृष्टिकोण' के 22 दिसम्बर 1985 के अंक में यूनाईटेड ट्रेड यूनियन सेन्टर (लै० सा०) की अखिल भारतीय कमेटी में महासचिव पद पर कामरेड प्रीतीश चन्दा का नाम गलती से छप गया है । नए महासचिव कामरेड तापस दत्ता निर्वाचित हुए हैं ।

अन्तिम पृष्ठ पर नीचे के चित्र में H.M.S के उमरावमल पुरोहित के स्थान पर B.M.S. के महासचिव श्री प्रभाकर पढ़ें ।

—सम्पादक

(पृष्ठ दो का शेष)

इनके अतिरिक्त AIKKMS के का० सत्यवान, प्रो० जगमोहन, डा० अनिल सद्गोपाल व अन्य जनसंगठनों के नेताओं ने भी भाषण दिये ।

राष्ट्रीय अभियान समिति के मांग-पत्र में, अन्य देशों में प्रतिबंधित जहरीले रसायनों, कीटनाशकों, दवाओं व गैसों पर भारत में रोक लगाने; भोपाल और दिल्ली के गैस पीड़ितों को राहत चिकित्सा, पुर्नवास व मुआवजा देने; यूनियन कार्बाइड की संपत्ति जब्त कर सभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत से खदेड़ने; औद्योगिक सुरक्षा का प्रबंध करने इत्यादि अनेक मांगें रखी हैं । देश के लाखों लोगों के हस्ताक्षरों से युक्त मांग पत्र प्रधानमन्त्री की अनुपस्थिति में का० आलोक प्रताप सिंह व डा० अनिल सद्गोपाल के प्रतिनिधि मंडल की ओर से उद्योग मंत्री नारायण दत्त तिवारी को पेश किया ।

इन मांगों को मनवाने के लिये आन्दोलन को और भी ऊंचे स्तर में ले जाने के संकल्प के साथ सभा की कार्यवाही समाप्त हुई ।

(पृष्ठ 1 का शेष)

असंगठित क्षेत्र आर्थिक गतिविधि में लगा है। अधिकांश लोगों के रोजगार का आधार यही क्षेत्र है।

भारत सरकार द्वारा 1980 में किए गए आर्थिक सैन्सस (economic census) (असम राज्य को छोड़कर) के आंकड़े अपनी कहानी आप कहते हैं। इन आंकड़ों के अनुसार फसल-उत्पादन और बागान (Plantation) के अतिरिक्त विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में लगे 1 करोड़, 84 लाख, 10 हजार उद्यमों का 61 % ग्रामीण उद्यम (rural enterprises) है, तथा इनमें 5 करोड़, 35 लाख, 80 हजार लोग काम करते हैं। विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि बड़े संस्थान (50 या अधिक कर्मचारी जहां काम करते हैं), कुल संस्थानों का एक प्रतिशत से कुछ ही अधिक है, तथा इनमें देश की कुल श्रम-शक्ति (work force) का मात्र 36 % ही काम पर लगा है। यह भी उल्लेखनीय है कि कुल श्रमिक जनता का 67% भाग गैर-कृषि क्षेत्र में भाड़े पर मजदूरी करता है। इसका अर्थ यह है कि उन्हें कभी भी काम दिया जा सकता है और कभी भी काम से हटाया जा सकता है। अर्थात कृषि और गैर-कृषि दोनों में ही लाखों-करोड़ों मजदूर निर्मम शोषण के बन्धन में जकड़े हैं। इससे इस बात की केवल झलक मात्र मिलती है कि 'राष्ट्रीय विकास तथा प्रगति' और नियोजन की कार्रवाइयों के पर्दे के पीछे क्या चल रहा है। इन सब का भारी मूल्य कई दशकों से श्रमिक जनता को चुकाना पड़ रहा है।

बेरोजगारी की स्थिति

आज रोजगार और रोजी से वंचित रहने की समस्या, श्रमिक जनता के लिये सबसे विकट समस्या है। यदि 100 आदमियों में 38 को रोजगार योग्य माना जाए तो देश की कुल 75 करोड़ आबादी में रोजगार-योग्य व्यक्तियों की कुल संख्या 28 करोड़ 50 लाख बनती है। इनमें से सरकारी अनुमान के अनुसार 8 करोड़ लोग पूरी तरह बेरोजगार हैं। इनमें 'छिपे बेरोजगार' (disguised Unemployeds) शामिल नहीं हैं, जिन की संख्या 15-17 करोड़ के लगभग है। यदि यही मान लें कि 8 करोड़ लोग ही बेरोजगार हैं, तो भी यदि ये लोग काम कर रहे होते तो प्रति वर्ष 90,000 करोड़ रुपए की सम्पत्ति उत्पन्न कर सकते थे; वह भी मूल्य बढ़ने (value addition) की न्यूनतम दर के हिसाब से। पर क्या करें, पूंजी के शासन का अपना नियम होता है। वह है अधिकतम मुनाफे का नियम, जिसका मानव विकास और सर्वांगीण सामाजिक-आर्थिक प्रगति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह तथ्य कि, 1951-61 की अवधि में रोजगार वृद्धि की जो दर 3.5 % थी, वह 1961-81 में घट कर 1 % रह गई है, इस तथ्य की पुष्टि करता है। 1983-84 में संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की दर मात्र 1.4 % रही। 1981-82 के दौरान रोजगार दफ्तरों के माध्यम से रोजगार चाहने वालों की संख्या में 14 % वृद्धि हुई। यह भी एक तथ्य है कि रोजगार तलाशने वालों की कुल संख्या का मात्र एक छोटा सा अंश ही रोजगार दफ्तरों में अपने नाम दर्ज कराता है।

बेरोजगारी की ऐसी विषम स्थिति होते हुए भी 1981 में सरकार ने रेलवे व अन्य सरकारी विभागों में 36,600 रिक्त पद रद्द कर दिये। 1980 में 33,800 रिक्त पद (vacancies) रद्द किए गए थे। इसके अतिरिक्त दो वर्ष पहले सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्र में नई भर्ती पर रोक लगा दी गई थी। यह रोक अब आगामी दो वर्ष के लिये और बढ़ा दी गई है। प्राइवेट मालिक भी इसी नीति पर चल रहे हैं। विशेषकर तब से, जब से सरकार ने उच्च तकनीक और कंप्यूटरीकरण के व्यापक प्रयोग का नारा दिया है। इस सबसे साबित हो जाता है कि सरकार को इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है कि रोजगार अवसरों को तत्काल बढ़ाने की कितनी आवश्यकता है।

रोजगार छिनने का बढ़ता खौफ

मजदूरी-खर्च घटाने के लिये हो रही व्यापक तालाबन्दी, कारखाना बन्दी, ले आफ, बीमार उद्योगों और मजदूरों की छंटनी से स्थिति की विकटता का अनुमान इन सरकारी आंकड़ों से सहज ही लगाया जा सकता है। 1984 में कुल 342 उद्योगों में तालाबंदी रही, जिससे 1,91,601 श्रमिक प्रभावित हुए। इसी वर्ष 187 उद्योग पूर्णतया बन्द हो गए, जिसके कारण 71,870 श्रमिक बेरोजगार हुए। 30 जून, 1984 तक 83,597 औद्योगिक इकाइयां बीमार घोषित थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि 25-28 नवम्बर 1985 को हुए भारतीय श्रम सम्मेलन में सरकार ने जिस प्रकार इन बीमार उद्योगों को औपचारिक बनाने की कोशिश की, वह घातक थी। सरकार ने जो रास्ता अपनाया है, उससे हजारों लघु और सहायक उद्योग तबाह हो जाएंगे। एकाधिकारी घरानों के लिए महत्वपूर्ण कुछ ही उद्योगों का विकास कर दिया जाएगा। इस प्रकार पूंजी का और भी सू.केन्द्रीकरण होगा।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन संकट के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जब, मार्क्स के शब्दों में "पूंजीपति, पूंजीपतियों को ही हड़पने लगते हैं।" इस प्रकार पूंजी का संकेन्द्रण और केन्द्रीकरण पहले से भी अधिक होने लगता है। इस प्रक्रिया में मजदूरों पर ही भारी मार पड़ती है। यही पूंजीवाद का कठोर नियम है, जिस पर पूंजीवाद की रक्षक और चाकरदार सरकार अपनी सहमति का ठप्पा लगाती है। इस प्रकार बीमार उद्योग (sick industry), कारखाना बन्दी, तालाबन्दी और-तो-और के कारण वर्षों से बेरोजगार लाखों श्रमिकों की फिर से काम पाने की आशा एकाधिकारी घरानों के हितों की बलिवेदी पर दम तोड़ देती है। निजि और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में ही ऐसा होता है। यह बात भी सुनने में आ रही है कि सरकार घाटे का रोना रोकर 20 में से 9 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को एकाधिकारी घरानों को बेच देना चाहती है। इन उपक्रमों में घाटे के लिये जिम्मेदार भ्रष्टाचार तथा, अफसरशाही और निजि पूंजी के गठजोड़ को समाप्त करने की सरकार ने कोई कोशिश नहीं की है।

कार्य-दिवसों का नुकसान जिम्मेवार कौन?

सरकार और एकाधिकारी घरानों के प्रवक्ताओं के लिये कार्य दिवसों के नुकसान (Man days Loss) की बढ़ती दर के लिये मजदूरों को दोष देना फैशन की बात हो गई है। लेकिन सरकार द्वारा प्रकाशित आंकड़ों से पता चलता है कि 1982 में कुल 3,75,80,000 कार्य दिवसों का नुकसान हुआ। इसका 68% केवल तालाबंदी के कारण हुआ। 1983 में कुल 3,71,50,000 कार्य दिवसों का नुकसान हुआ। इन में से 66% के तालाबंदी जिम्मेदार थी।

इसके अतिरिक्त 1983 में तालाबंदी की संख्या 10,000 तक पहुंच गई। उत्पादन व्यवस्था के तीव्र संकट के कारण बीमार उद्योगों की समस्या स्थाई बन गई है। जहां तक हड़ताल के कारण हुए कार्य दिवसों के नुकसान की बात है, 1982 में 1 करोड़ 7 लाख 10 हजार और 1983 में 79 लाख, 10 हजार कार्य दिवसों का नुकसान हड़ताल के कारण हुआ। उल्लेखनीय है कि मजदूरी संशोधन (Wage revision) अथवा छंटनी के खिलाफ विरोध, हड़ताल के दो मुख्य कारण थे। ऐसे में काम रोकने (Work Stoppage) और कार्य दिवसों के नुकसान के लिये श्रमिकों को किस प्रकार जिम्मेदार ठहराया जा सकता है? इस पर भी अनेक वर्षों से इन्सटाल्ड औद्योगिक क्षमता का औसतन 60% से भी कम इस्तेमाल में लाया जा रहा है। पूरी क्षमता को उपयोग में लाने से क्या रुकावट है? मजदूर हैं अथवा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अभिशाप से उपजा बाजार का संकट?

औद्योगिक प्रगति की दर का कम होते जाना

औद्योगिक प्रगति की दर भी मुख्य रफ्तार और भी कम हो गई है। छठी पंच वर्षीय योजना (1980-85) में औद्योगिक प्रगति की दर का लक्ष्य 7.4% था; लेकिन यह 4.4% से अधिक नहीं जा सका। ध्यान रहे कि यही आपने में इस दर को नापते समय मुद्रास्फीति की ऊंची दर के कारण निरंतर घटते मौद्रिक अवमूल्यन को ध्यान में नहीं रखा जाता है।

यही नहीं, औद्योगिक प्रगति में और भी कमी आ जाने के साथ, लघु उद्योग और आधारभूत ढांचे के निर्माण में सरकारी निवेश (investment) में भी भारी कटौती हुई है। इसका कारण ढूंढना कठिन नहीं है। राजसत्ता की प्रहरी बुर्जुआ सरकार एकाधिकार पूंजीपतियों को हैसियत से सैंकड़ों करोड़ रुपए की रियायतें दे रही है।

क्रमशः

[यू.टी.यू.सी. (ले.स.) के 17 वें अखिल भारतीय सम्मेलन में पेश की गई महासचिव की रिपोर्ट का एक अंश]

यूनाईटिड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (लेनिन सरणी) अब यूनाईटिड ट्रेड यूनियन सेन्टर (लेनिन सरणी)

21—23 नवम्बर 1985 को हुए यू० टी० यू० सी० (ले० सा०) के 17 वें अखिल भारतीय सम्मेलन में संगठन नाम सर्वसम्मति से यूनाईटिड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (लेनिन सरणी) से बदल कर यूनाईटिड ट्रेड यूनियन सेन्टर (लेनिन सरणी) कर दिया गया है। संगठन का संक्षिप्त नाम पहले के समान ही यू० टी० यू० सी० (ले० सा०) रहेगा।

सर्वहारा दृष्टिकोण पढ़ें

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर आफ इंडिया (एस.यू.सी.आई.) की ओर से कामरेड प्राणसिंह द्वारा 4/11772 गली ..., दिल्ली - 5 से सम्पादित व प्रकाशित तथा सोलंकी प्रिंटर्स, बी-2833 ... दिल्ली - 35 से मुद्रित